संजय वेलट्ठिपुत्त और स्याद्वाद

स्याद्वादके सम्बन्धमें भ्रान्तियाँ

जैन दर्शनके स्याद्वाद सिद्धान्तको अभी भी विद्वान् ठीक तरहसे समझनेका प्रयत्न नहीं करते और धर्मकीर्ति एवं शङ्कराचार्यकी तरह उसके बारेमें भ्रान्त उल्लेख अथवा कथन कर जाते हैं।

पं० बलदेव उपाध्यायकी भ्रान्ति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें संस्कृत-पाली विभागके व्याख्याता पं० बलदेव उपाध्यायने[1] सन् १९४६ में 'बौद्ध-दर्शन' नामका एक ग्रन्थ हिन्दीमें लिखकर प्रकाशित किया है। इसमें उन्होंने बुद्धके समकालीन मत-प्रवर्तकोंके मतोंको देते हुए संजय वेलट्ठिपुत्तके अनिश्चिततावादको भी बौद्धोंके 'दीघनिकाय' (हिन्दी अ० पृ० २२) ग्रन्थसे उपस्थित किया है और अन्तमें यह निष्कर्ष निकाला है कि "यह अनेकान्तवाद प्रतीत होता है। सम्भवतः ऐसे ही आधारपर महावीरका स्याद्वाद प्रतिष्ठित किया गया था।"

राहुल सांस्कृत्यायनका भ्रम

इसी प्रकार दर्शन और हिन्दीके ख्यातिप्राप्त बौद्ध विद्वान् राहुल सांस्कृत्यायन अपने 'दर्शन-दिग्दर्शन' में लिखते हैं[2]—

"आधुनिक जैन-दर्शनका आधार 'स्याद्वाद' है, जो मालूम होता है संजय वेलट्ठिपुत्तके चार अङ्गवाले अनेकान्तवादको (!) लेकर उसे सात अङ्गवाला किया गया है। संजयने तत्त्वों (= परलोक, देवता) के बारेमें कुछ निश्चयात्मक रूपसे कहनेसे इन्कार करते हुए उस इन्कारको चार प्रकार कहा है—

१. है ?—नहीं कह सकता।

२. नहीं है ?—नहीं कह सकता।

३. है भी नहीं भी ?—नहीं कह सकता।

४. न है और न नहीं है—नहीं कह सकता।

इसकी तुलना कीजिए जैनोंके सात प्रकारके स्याद्वादसे—

१. है ?—हो सकता है (स्याद् अस्ति)

२. नहीं है ?—नहीं भी हो सकता (स्यान्नास्ति)

३. है भी नहीं भी ?—है भी और नहीं भी हो सकता है (स्यादस्ति च नास्ति च)

उक्त तीनों उत्तर क्या कहे जा सकते (= वक्तव्य) हैं ? इसका उत्तर जैन 'नहीं' में देते हैं—

४. स्याद् (हो सकता है) क्या यह कहा जा सकता (= वक्तव्य) है ?—नहीं, स्याद् अवक्तव्य है।

५. 'स्याद् अस्ति' क्या यह वक्तव्य है ? नहीं 'स्याद् अस्ति' अवक्तव्य है।

६. 'स्याद् नास्ति' क्या यह वक्तव्य है ? नहीं, 'स्याद् नास्ति' अवक्तव्य है।

७. 'स्याद् अस्ति च नास्ति च' क्या यह वक्तव्य है ? नहीं, 'स्याद् अस्ति च नास्ति च' अवक्तव्य है।'

---

१. बौद्धदर्शन पृ० ४०।

२. दर्शनदिग्दर्शन पृ० ४९६-९७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनोंके मिलानेसे मालूम होगा कि जैनोंने संजयके पहले वाले तीन वाक्यों (प्रश्न और उत्तर दोनों) को अलग करके अपने स्याद्वादकी छह भङ्गियाँ बनाई हैं, और उसके चौथे वाक्य "न है और न नहीं है" को छोड़कर 'स्याद्' भी अवक्तव्य है यह सातवाँ भङ्ग तैयार कर अपनी सप्तभङ्गी पूरी की।

उपलभ्य सामग्रीसे मालूम होता है कि संजय अनेकान्तवादका प्रयोग परलोक, देवता, कर्मफल, मुक्त पुरुष जैसे—परोक्ष विषयोंपर करता था। जैन संजयकी युक्तिको प्रत्यक्ष वस्तुओंपर लागू करते हैं। उदाहरणार्थ सामने मौजूद घटकी सत्ताके बारेमें यदि जैन-दर्शनसे प्रश्न पूछा जाय, तो उत्तर निम्न प्रकार मिलेगा—

१. घट यहाँ है ?—हो सकता है (=स्यादस्ति)।

२. घट यहाँ नहीं है ?—नहीं भी हो सकता है (=स्याद् नास्ति)।

३. क्या घट यहाँ है भी और नहीं भी है ?—है भी और नहीं भी हो सकता है (=स्याद् अस्ति च नास्ति च)।

४. 'हो सकता है' (=स्याद्) क्या यह कहा जा सकता है ?—नहीं, 'स्याद्' यह अ-वक्तव्य है।

५. घट यहाँ 'हो सकता है' (=स्यादस्ति) क्या यह कहा जा सकता है ?—नहीं, 'घट यहाँ हो सकता है' यह नहीं कहा जा सकता है।

६. घट यहाँ 'नहीं हो सकता है' (=स्यान् नास्ति) क्या यह कहा जा सकता है ?—नहीं, 'घट यहाँ नहीं हो सकता' यह नहीं कहा जा सकता।

७. घट यहाँ 'हो भी सकता है', नहीं भी हो सकता है', क्या यह कहा जा सकता है ? नहीं, 'घट' यहाँ हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है' यह नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार एक भी सिद्धान्त (=वाद) की स्थापना न करना, जो कि संजयका वाद था, उसीको संजयके अनुयायियोंके लुप्त हो जानेपर जैनोंने अपना लिया, और उसके चतुर्भंगी न्यायको सप्तभङ्गीमें परिणत कर दिया।"

उक्त भ्रान्तियोंका निराकरण

मालूम होता है कि इन विद्वानोंने जैनदर्शनके स्याद्वाद-सिद्धान्तको निष्पक्ष होकर समझनेका प्रयत्न नहीं किया और परम्परासे जो जानकारी उन्हें मिली उसीके आधारपर उन्होंने उक्त कथन किया है। अच्छा होता, यदि वे किसी जैन विद्वान् अथवा दार्शनिक जैन ग्रन्थसे जैनदर्शनके स्याद्वादको समझकर उसपर कुछ लिखते। हमें आश्चर्य है कि दर्शनों और उनके इतिहासका अपनेको अधिकारी विद्वान् माननेवाला राहुलजी जैसा महापण्डित जैनदर्शन और उसके इतिहासको छिपाकर यह कैसे लिख गया कि "संजयके वादको ही संजयके अनुयायियोंके लुप्त हो जानेपर जैनोंने अपना लिया।" क्या वे यह मानते हैं कि जैनधर्म व जैनदर्शन और उनके माननेवाले जैन संजयके पहले नहीं थे ? यदि नहीं, तो उनका उक्त लिखना असम्बद्ध और भ्रान्त है। और यदि मानते हैं, तो उनकी यह बड़ी भारी ऐतिहासिक भूल है, जिसे स्वीकार करके उन्हें तुरन्त ही अपनी भूलका परिमार्जन करना चाहिये। यह अब सर्व विदित हो गया है और प्रायः सभी निष्पक्ष ऐतिहासिक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानोंने स्वीकार भी कर लिया है कि जैनधर्म व जैनदर्शनके प्रवर्त्तक भगवान् महावीर नहीं थे, अपितु उनसे पूर्व हो गये ऋषभदेव आदि २३ तीर्थङ्कर उनके प्रवर्त्तक हैं, जो विभिन्न समयोंमें हुए हैं और जिनमें पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेव, २२वें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि (कृष्णके समकालीन और उनके चचेरे भाई) तथा २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ तो ऐतिहासिक महापुरुष भी सिद्ध हो चुके हैं। अतः भगवान् महावीरके समकालीन संजय और उसके अनुयायियोंके पूर्व जैनधर्म व जैनदर्शन और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके माननेवाले जैन विद्यमान थे और इसलिये उनके द्वारा संजयके वादको अपनानेका राहुलजीका आक्षेप सर्वथा निराधार और असंगत है। ऐसा ही एक भारी आक्षेप अपने बौद्ध ग्रन्थकारोंकी प्रशंसाकी धुनमें वे समग्र भारतीय विद्वानोंपर भी कर गये, जो अक्षम्य है। वे इसी 'दर्शन दिग्दर्शन' (पृ० ४९८) में लिखते हैं—

"नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु दिङ्नाग, धर्मकीर्ति—भारतके अप्रतिम दार्शनिक इसी धारामें पैदा हुए थे। उन्हींके ही उच्छिष्ट-भोजी पीछेके प्रायः सारे ही दूसरे भारतीय दार्शनिक दिखलाई पड़ते हैं।"

राहुलजी जैसे कलमशूरोंको हरेक बातको और प्रत्येक पदवाक्यादिको नाप-जोखकर ही कहना और लिखना चाहिए। उनका यह लिखना बहुत ही भ्रान्त और आपत्तिजनक है।

अब संजयका वाद क्या है और जैनोंका स्याद्वाद क्या है? तथा उक्त विद्वानोंका उक्त कथन क्या संगत एवं अभ्रान्त है? इन बातोंपर संक्षेपमें विचार किया जाता है।

संजयवेलट्ठिपुत्तका वाद (मत)

भगवान् महावीरके समकालमें अनेक मत-प्रवर्तक विद्यमान थे। उनमें निम्न छह मत-प्रवर्तक बहुत प्रसिद्ध और लोकमान्य थे—

१ अजितकेश कम्बल, २ मक्खलि गोशाल, ३ पूरण काश्यप, ४ प्रक्रुध कात्यायन, ५ संजय वेलट्ठिपुत्त और ६ गौतम बुद्ध।

इनमें अजितकेश कम्बल और मक्खलि गोशाल भौतिकवादी, पूरण काश्यप और प्रक्रुध कात्यायन नित्यतावादी, सञ्जय वेलट्ठिपुत्त अनिश्चिततावादी और गौतम बुद्ध क्षणिक अनात्मवादी थे।

प्रकृतमें हमें सञ्जयके मतको जानना है। अतः उनके मतको नीचे दिया जाता है। 'दीघनिकाय' में उनका मत इस प्रकार बतलाया है—

"यदि आप पूछें—'क्या परलोक है', तो यदि मैं समझता होऊँ कि परलोक है तो आपको बताऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं कहता वैसा भी नहीं कहता, दूसरी तरहसे भी नहीं कहता। मैं यह भी नहीं कहता कि 'वह नहीं है'। मैं यह भी नहीं कहता कि 'वह नहीं नहीं है। परलोक नहीं है, परलोक नहीं नहीं।' देवता (=औपपादिक प्राणी) हैं····। देवता नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न हैं और न नहीं हैं···· अच्छे बुरे कर्मके फल हैं, नहीं हैं, हैं भी नहीं भी, न हैं और न नहीं है। तथागत (=मुक्तपुरुष) मरनेके बाद होते हैं, नहीं होते हैं····· ?—यदि मुझसे ऐसा पूछें, तो मैं यदि ऐसा समझता होऊँ ·····तो ऐसा आपको कहूँ। मैं ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं कहता·····।"

यह बौद्धों द्वारा उल्लेखित संजयका मत है। इसमें पाठक देखेंगे कि संजय परलोक, देवता, कर्मफल और मुक्तपुरुष इन अतीन्द्रिय पदार्थोंके जाननेमें असमर्थ था और इसलिये उनके अस्तित्वादिके बारेमें वह कोई निश्चय नहीं कर सका। जब भी कोई इन पदार्थोंके बारेमें उससे प्रश्न करता था तब वह चतुष्कोटि विकल्पद्वारा यही कहता था कि मैं जानता होऊँ तो बतलाऊँ और इसलिये निश्चयसे कुछ भी नहीं कह सकता।[1] अतः यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि संजय अनिश्चितावादी अथवा संशयवादी था और उसका मत अनिश्चिततावाद या संशयवादरूप था। राहुलजीने स्वयं भी लिखा है कि "संजयका दर्शन जिस रूपमें हम

१. देखो, 'दर्शन-दिग्दर्शन' पृ० ४९२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक पहुँचा है उससे तो उसके दर्शनका अभिप्राय है, मानवकी सहजबुद्धिको भ्रममें डाला जाये और वह कुछ निश्चय न कर भ्रान्त धारणाओंको अप्रत्यक्ष रूपसे पुष्ट करे।''

जैनदर्शनका स्याद्वाद और अनेकान्तवाद

परन्तु जैनदर्शनका स्याद्वाद संजयके उक्त अनिश्चिततावाद अथवा संशयवादसे एकदम भिन्न और निर्णय-कोटिको लिये हुए हैं। दोनोंमें पूर्व-पश्चिम अथवा ३६ के अंकों जैसा अन्तर है। जहाँ संजयका वाद अनिश्चयात्मक है वहाँ जैनदर्शनका स्याद्वाद निश्चयात्मक है। वह मानवकी सहज बुद्धिको भ्रममें नहीं डालता, बल्कि उसमें आभासित अथवा उपस्थित विरोधों व सन्देहोंको दूर कर वस्तु-तत्त्वका निर्णय करानेमें सक्षम होता है। स्मरण रहे कि समग्र (प्रत्यक्ष और परोक्ष) वस्तु-तत्त्व अनेकधर्मात्मक है—उसमें अनेक (नाना) अन्त (धर्म-शक्ति-स्वभाव) पाये जाते हैं और इसलिये उसे अनेकान्तात्मक भी कहा जाता है। वस्तु-तत्त्वकी यह अनेकान्तात्मकता निसर्गतः है, अप्राकृतिक नहीं। यही वस्तुमें अनेक धर्मोंका स्वीकार व प्रतिपादन जैनोंका अनेकान्तवाद है। संजयके वादको, जो अनिश्चिततावाद अथवा संशयवादके नामसे उल्लिखित होता है, अनेकान्तवाद कहना अथवा बतलाना किसी तरह भी उचित एवं सङ्गत नहीं है, क्योंकि संजयके वादमें एक भी सिद्धान्तकी स्थापना नहीं है; जैसाकि उसके उपरोक्त मत-प्रदर्शन और राहुलजीके पूर्वोक्त कथनसे स्पष्ट है। किन्तु अनेकान्तवादमें अस्तित्वादि सभी धर्मोंकी स्थापना और निश्चय है। जिस जिस अपेक्षासे वे धर्म उसमें व्यवस्थित एवं निश्चित हैं उन सबका निरूपक स्याद्वाद है। अनेकान्तवाद व्यवस्थाप्य है तो स्याद्वाद उसका व्यवस्थापक है। दूसरे शब्दोंमें अनेकान्तवाद वस्तु (वाच्य-प्रमेय) रूप है और स्याद्वाद निर्णायक (वाचक-तत्त्व) रूप है। वास्तवमें अनेकान्तात्मक वस्तुतत्त्वको ठीक-ठीक समझने-समझाने, प्रतिपादन करने-करानेके लिये ही स्याद्वादका आविष्कार किया गया है, जिसके प्ररूपक जैनोंके सभी (२४) तीर्थंकर हैं। अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरको उसका प्ररूपण उत्तराधिकारके रूपमें २३ वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथसे तथा भगवान् पार्श्वनाथको कृष्णके समकालीन २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमिसे मिला था। इस तरह पूर्व पूर्व तीर्थंकरसे अग्रिम तीर्थंकरको परम्परया स्याद्वादका प्ररूपण प्राप्त हुआ था। इस युगके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं जो इस युगके आद्य स्याद्वादप्ररूपक हैं। महान् जैन तार्किक समन्तभद्र[1] और अकलङ्कदेव[2] जैसे प्रख्यात जैनाचार्योंने सभी तीर्थंकरोंको स्पष्टतः स्याद्वादी—स्याद्वादप्रतिपादक बतलाया है और उस रूपसे उनका गुण-कीर्तन किया है। जैनोंकी यह अत्यन्त प्रामाणिक मान्यता है कि उनके हर एक तीर्थंकरका उपदेश 'स्याद्वादामृतगर्भ' होता है और वे 'स्याद्वादपुण्योदधि' होते हैं। अतः केवल भगवान् महावीर ही स्याद्वादके प्रतिष्ठापक व प्रतिपादक नहीं हैं। स्याद्वाद जैनधर्मका मौलिक सिद्धान्त है और वह भगवान् महावीरके पूर्ववर्ती ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक कालसे समागत है।

स्याद्वादका अर्थ और प्रयोग

'स्याद्वाद' पद स्यात् और वाद इन दो शब्दोंसे बना है। 'स्यात्' अव्यय निपातशब्द है, क्रिया अथवा अन्य शब्द नहीं, जिसका अर्थ है कथञ्चित्, किंचित्, किसी अपेक्षा, कोई एकदृष्टि, कोई एक धर्मकी

---

१. 'बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥१४॥'—स्वयंभूस्तोत्रगत शंभवजिनस्तोत्र।

२. ''धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु **स्याद्वादिभ्यो** नमो नमः।
वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये ॥१॥''—लघीयस्त्रय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवक्षा कोई एक ओर। और 'वाद' शब्दका अर्थ है मान्यता अथवा कथन। जो स्यात् (कथञ्चित्) का कथन करनेवाला अथवा 'स्यात्' को लेकर प्रतिपादन करनेवाला है वह स्याद्वाद है। अर्थात् जो सर्वथा एकान्तका त्यागकर अपेक्षासे वस्तुस्वरूपका विधान करता है वह स्याद्वाद है। कथञ्चिद्वाद, अपेक्षावाद आदि इसीके दूसरे नाम हैं—इन नामोंसे भी उसीका बोध होता है। जैन तार्किकशिरोमणि स्वामी समन्तभद्रने आप्त-मीमांसा और स्वयम्भूस्तोत्रमें यही कहा है—

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥१०४॥—आप्तमीमांसा।

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥
सर्वथानियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥—स्वयम्भूस्तोत्र।

अतः 'स्यात्' शब्दको संशयार्थक, भ्रमार्थक अथवा अनिश्चयात्मक नहीं समझना चाहिये। वह अविवक्षित धर्मोंकी गौणता और विवक्षित धर्मकी प्रधानताको सूचित करता हुआ विवक्षित हो रहे धर्मका विधान एवं निश्चय करानेवाला है। संजयके अनिश्चिततावादकी तरह वह अनिर्णीति अथवा वस्तुतत्त्वकी सर्वथा अवाच्यताकी घोषणा नहीं करता। उसके द्वारा जैसा प्रतिवादन होता है वह समन्तभद्रके शब्दोंमें निम्न प्रकार है—

कथञ्चित्ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥१४॥
सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥१५॥
क्रमार्पितद्वयाद् द्वैतं, सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गाः स्वहेतुतः ॥१६॥

अर्थात् जैनदर्शनमें समग्र वस्तुतत्त्व कथञ्चित् सत् ही है, कथंचित् असत् ही है प्रथा कथंचित् उभय ही है और कथंचित् अवाच्य ही है, सो यह सब नयविवक्षासे है, सर्वथा नहीं।

स्वरूपादि (स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव इन) चारसे उसे कौन सत् ही नहीं मानेगा और पररूपादि (परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव इन) चारसे कौन असत् ही नहीं मानेगा। यदि इस तरह उसे स्वीकार न किया जाय तो उसकी व्यवस्था नहीं हो सकती।

क्रमसे अर्पित दोनों (सत् और असत्) की अपेक्षासे वह कथंचित् उभय ही है, एक साथ दोनों (सत् और असत्) को कह न सकनेसे अवाच्य ही है। इसी प्रकार अवक्तव्यके बादके अन्य तीन भङ्ग (सदवाच्य, असदवाच्य, और सदसदवाच्य) भी अपनी विवक्षाओंसे समझ लेना चाहिए।

यही जैनदर्शनका सप्तभङ्गी न्याय है जो विरोधी-अविरोधी धर्मयुगलको लेकर प्रयुक्त किया जाता है और तत्तत् अपेक्षाओंसे वस्तु—धर्मोंका निरूपण करता है। स्याद्वाद एक विजयी योद्धा है और सप्तभङ्गी—न्याय उसका अस्त्र-शस्त्रादि विजय-साधन है। अथवा यों कहिए कि वह एक स्वतः सिद्ध न्यायाधीश है और सप्तभङ्गी उसके निर्णयका एक साधन है। जैनदर्शनके इन स्याद्वाद, सप्तभङ्गीन्याय, अनेकान्तवाद आदिका विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन आप्तमीमांसा, स्वयम्भूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, सन्मतिसूत्र, अष्टशती, अष्ट-सहस्री, अनेकान्तजयपताका, स्याद्वादमञ्जरी आदि जैन दार्शनिक ग्रन्थोंमें समुपलब्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजयके अनिश्चिततावाद और जैनदर्शनके स्याद्वादमें अन्तर

ऊपर राहुलजीने संजयकी चतुर्भङ्गी इस प्रकार बतलाई है—

१. है ?—नहीं कह सकता ।

२. नहीं है ?—नहीं कह सकता ।

३. है भी नहीं भी ?—नहीं कह सकता ।

४. न है और न नहीं है ?—नहीं कह सकता ।

संजयने सभी परोक्ष वस्तुओंके बारेमें 'नहीं कह सकता' जवाब दिया है और इसलिये उसे अनिश्चिततावादी कहा गया है ।

जैनोंकी जो सप्तभंगी है वह इस प्रकार है—

१. वस्तु है ?—कथञ्चित् (अपनी द्रव्यादि चार अपेक्षाओंसे) वस्तु है ही—स्यादस्त्येव घटादिवस्तु ।

२. वस्तु नहीं है ?—कथञ्चित् (परद्रव्यादि चार अपेक्षाओंसे) वस्तु नहीं ही है—स्यान्नास्त्येव घटादि वस्तु ।

३. वस्तु है, नहीं (उभय) है ?—कथञ्चित् (क्रमसे अर्पित दोनों—स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि चार अपेक्षाओंसे) वस्तु है, नहीं (उभय) ही है—स्यादस्ति नास्त्येव घटादि वस्तु ।

४. वस्तु अवक्तव्य है ?—कथंचित् (एक साथ विवक्षित स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि दोनों अपेक्षाओंसे कही न जा सकनेसे) वस्तु अवक्तव्य ही है—स्यादवक्तव्यमेव घटादिवस्तु ।

५. वस्तु 'है—अवक्तव्य है' ?—कथंचित् (स्वद्रव्यादिसे और एक साथ विवक्षित दोनों स्व-पर-द्रव्यादिकी अपेक्षाओंसे कही न जा सकनेसे) वस्तु 'है—अवक्तव्य ही है'—स्यादस्त्यवक्तव्यमेव घटादिवस्तु ।

६. वस्तु 'नहीं—अवक्तव्य है' ?—कथंचित् (परद्रव्यादिसे और एक साथ विवक्षित दोनों स्व-पर द्रव्यादिकी अपेक्षासे कही न जा सकनेसे) वस्तु 'नहीं—अवक्तव्य ही है'—स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव घटादिवस्तु ।

७. वस्तु 'है—नहीं—अवक्तव्य है' ?—कथंचित् (क्रमसे अर्पित स्व-पर द्रव्यादिसे और एक साथ अर्पित स्वपरद्रव्यादिकी अपेक्षासे कही न जा सकनेसे) वस्तु है, नहीं और अवक्तव्य ही है'—स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

जैनोंकी इस सप्तभङ्गीमें पहला, दूसरा और चौथा ये तीन भङ्ग तो मौलिक हैं और तीसरा, पाँचवाँ, और छठा द्विसंयोगी तथा सातवाँ त्रिसंयोगी भङ्ग है और इस तरह अन्य चार भङ्ग मूलभूत तीन भङ्गोंके संयोगज भङ्ग हैं । जैसे नमक, मिर्च और खटाई इन तीनके संयोगज स्वाद चार ही बन सकते हैं—नमक-मिर्च, नमक-खटाई, मिर्च-खटाई और नमक-मिर्च-खटाई—इनसे ज्यादा या कम नहीं । इन संयोगी चार स्वादोंमें मूल तीन स्वादोंको और मिला देनेसे कुल स्वाद सात ही बनते हैं । यही सप्तभङ्गोंकी बात है । वस्तुमें यों तो अनन्तधर्म हैं, परन्तु प्रत्येक धर्मको लेकर विधि-निषेधकी अपेक्षासे सात ही धर्म व्यवस्थित हैं—सत्त्वधर्म, असत्त्वधर्म, सत्त्वासत्त्वोभय, अवक्तव्यत्व, सत्त्वावक्तव्यत्व, असत्त्वावक्तव्यत्व और सत्त्वासत्त्वावक्तव्यत्व । इन सातसे न कम हैं और न ज्यादा । अतएव शङ्काकारोंको सात ही प्रकारके सन्देह, सात ही प्रकारकी जिज्ञासाएँ, सात ही प्रकारके प्रश्न होते हैं और इसलिये उनके उत्तरवाक्य सात ही होते हैं, जिन्हें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तभङ्ग या सप्तभङ्गीके नामसे कहा जाता है। इस तरह जैनोंकी सप्तभङ्गी उपपत्तिपूर्ण ढङ्गसे सुव्यवस्थित और सुनिश्चित है। पर संजयकी उपर्युक्त चतुर्भङ्गीमें कोई भी उपपत्ति नहीं है। उसने चारों प्रश्नोंका जवाब 'नहीं कह सकता' में ही दिया है और जिसका कोई भी हेतु उपस्थित नहीं किया और इसलिये वह उनके विषयमें अनिश्चित है।

राहुलजीने जो ऊपर जैनोंकी सप्तभङ्गी दिखाई है वह भ्रमपूर्ण है। हम पहले कह आये हैं कि जैनदर्शनमें 'स्याद्वाद'के अन्तर्गत 'स्यात्' शब्दका अर्थ 'हो सकता है' ऐसा सन्देह अथवा भ्रमरूप नहीं है उसका तो कथञ्चित् (किसी एक अपेक्षासे) अर्थ है जो निर्णयरूप है। उदाहरणार्थ देवदत्तको लीजिये, वह पिता-पुत्रादि अनेक धर्मरूप है। यदि जैनदर्शनसे यह प्रश्न किया जाय कि क्या देवदत्त पिता है ? तो जैनदर्शन स्याद्वाद द्वारा निम्न प्रकार उत्तर देगा—

१. देवदत्त पिता है—अपने पुत्रकी अपेक्षासे—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति'।

२. देवदत्त पिता नहीं है—अपने पिता-मामा आदिकी अपेक्षासे—क्योंकि उनकी अपेक्षासे तो वह पुत्र, भानजा आदि है—'स्यात् देवदत्तः पिता नास्ति'।

३. देवदत्त पिता है और नहीं है—अपने पुत्रकी अपेक्षा और अपने पिता-मामा आदिकी अपेक्षा से—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति च नास्ति च'।

४. देवदत्त अवक्तव्य है—एक साथ पिता-पुत्रादि दोनों अपेक्षाओंसे कहा न जा सकनेसे—'स्यात् देवदत्तः अवक्तव्यः'।

५. देवदत्त पिता 'है—अवक्तव्य है'—अपने पुत्रकी अपेक्षा तथा एक साथ पिता-पुत्रादि दोनों अपेक्षाओंसे कहा न जा सकनेसे—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्त्यवक्तव्यः'।

६. देवदत्त 'पिता नहीं है—अवक्तव्य है'—अपने पिता-मामा आदिकी अपेक्षा और एक साथ पिता पुत्रादि दोनों अपेक्षाओंसे कहा न जा सकनेसे—'स्यात् देवदत्तः नास्त्यवक्तव्यः'।

७. 'देवदत्त पिता' है और नहीं है तथा अबक्तव्य है'—क्रमसे विवक्षित पिता-पुत्रादि दोनोंकी अपेक्षासे और एक साथ विवक्षित पिता-पुत्रादि दोनों अपेक्षाओंसे कहा न जा सकनेसे—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति नास्ति चावक्तव्यः'।

यह ध्यान रहे कि जैनदर्शनमें प्रत्येक वाक्यमें उसके द्वारा प्रतिपाद्य धर्मका निश्चय करानेके लिये 'एवकारका' विधान अभिहित है जिसका प्रयोग नयविशारदोंके लिये यथेच्छ है—वे करें चाहे न करें। न करनेपर भी उसका अध्यवसाय वे कर लेते हैं। राहुलजी जब 'स्यात्' शब्दके मूलार्थके समझनेमें ही भारी भूल कर गये तब स्याद्वादकी भंगियोंके मेल-जोल करनेमें भूलें कर ही सकते थे और उसीका परिणाम है कि जैनदर्शनके सप्तभंगोंका प्रदर्शन उन्होंने ठीक तरह नहीं किया। हमें आशा है कि वे तथा स्याद्वादके सम्बन्धमें भ्रान्त अन्य विद्वान् भी जैनदर्शनके स्याद्वाद और सप्तभंगीको ठीक तरहसे ही समझने और उल्लेख करनेका प्रयत्न करेंगे।

यदि संजयके दर्शन और चतुर्भङ्गीको ही जैन दर्शनमें अपनाया गया होता तो जैनदार्शनिक उसके दर्शनका कदापि आलोचन न करते। अष्टशती और अष्टसहस्रीमें अकलंकदेव तथा विद्यानन्दने इस दर्शनकी जैसी कुछ कड़ी आलोचना करके उसमें दोषोंका प्रदर्शन किया है वह देखते ही बनता है। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तर्हि अस्तीति न भणामि, नास्तीति च न भणामि, यदपि च भणामि तदपि न भणामीति दर्शनमस्त्विति कश्चित्, सोपि पापीयान् । तथा हि सद्भावेतराभ्यामनभिलापे वस्तुनः केवलं मूकत्वं जगतः स्यात्, विधिप्रतिषेधव्यवहारायोगात् । न हि सर्वात्मनानभिलाप्यस्वभावं बुद्धिरध्यवस्यति । न चानध्यवसेयं प्रमितं नाम, गृहीतस्यापि तादृशस्यागृहीतकल्पत्वात् । मूर्च्छाचैतन्यवदिति ।"—अष्टस० पृ० १२९ ।

इससे यह साफ है कि संजयकी सदोष चतुर्भंगी और उसके दर्शनको जैनदर्शनने नहीं अपनाया। उसके अपने स्याद्वादसिद्धान्त, अनेकान्त-सिद्धान्त, सप्तभंगीसिद्धान्त संजयसे बहुत पहलेसे प्रचलित हैं। जैसे उसके अहिंसा-सिद्धान्त, अपरिग्रह-सिद्धान्त, कर्म-सिद्धान्त आदि सिद्धान्त प्रचलित हैं और जिनके आद्यप्रवर्त्तक इस युगके तीर्थङ्कर ऋषभदेव हैं और अन्तिम महावीर हैं। विश्वास है उक्त विद्वान् अपनी जैनदर्शन व स्याद्वादके बारेमें हुई भ्रान्तियोंका परिमार्जन करेंगे और उसकी घोषणा कर देंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org